REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514
VOLUME - 8 | ISSUE - 9 | JUNE - 2019

प्रयोजनवाद के शैक्षिक विचारों का अनुशीलन

प्रवीण बाबू [1] , डॉ. सीमा पाण्डेय[2]

[1] (शोधार्थी) श्री सत्य साईं प्रौद्योगिकी एवं चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय, सीहोर.

[2] (शोध पर्यवेक्षक) श्री सत्य साईं प्रौद्योगिकी एवं चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय, सीहोर.

सारांश:

शिक्षा मानव जीवन का एक सुसंस्कृत एवं महत्वपूर्ण प्रक्ष है। इसके द्वारा मानव अपना आर्थिक विकास करता है एवं जीवन में पूर्णता प्राप्त करता है शिक्षा के द्वारा मानव अपने आचार–विचार रहन–सहन में परिर्वतन लाता है। शिक्षा के द्वारा ही समस्त विश्व की आर्थिक, वैज्ञानिक, सामाजिक सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति सम्पन्न हो सकती है।

प्रयोजनवाद एवं शिक्षा –

दार्शनिक विचारों की श्रृखलां में प्रयोजनवाद एक भौतिकवादी दर्शन है एक स्वतंत्र दर्शन के रूप में इस विचारधारा का विकास 19वीं शताब्दी में अमेरिका से माना जाता है । यद्यपि इसकी झलक 16वीं शताब्दी में बेकन के लेख और 18वीं शताब्दी में काम्पटे के ''पॉजिटिवी फिलॉसफी' नामक पुस्तक के वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्राप्त होता है। यह दर्शन उसी विचारधारा को सत्य मानता है। जो प्रयोग की कसौटी पर खरा उतरता है।

प्रयोजनवाद एवं तत्व मीमांसा –

1. संसार का स्वंय अस्तित्व है।
2. संसार में लगातार प्रक्रिया तथा परिवर्तन होते रहते है।
3. संसार अनिश्चित है। यह बदलता रहता है।
4. मानव संसार के साथ निरन्तर है।
5. मानव संसार में सक्रिय कारण नहीं है।

प्रयोजनवाद एवं ज्ञान मीमांसा –

1. इस सम्प्रदाय की ज्ञान मीमांसा दो छोरों अनुभववाद तथा तर्कवाद के बीच में है।
2. प्रयोजनवाद सार्वभौमिक सत्यता या सिद्धान्तों से प्रारम्भ नहीं होता।
3. प्रयोजनवाद के अनुसार हमें किसी तथ्यों का ज्ञान उस समय प्राप्त होता है जब हम वस्तुओं का सक्रीय अनुभव कर रहे होते है और उसके गुण इस प्रकार से प्रकाशमय होते है कि हम उनको जान जाते है।
4. अनुभव प्राथमिक रूप से केवल ज्ञान के लिए हो ऐसा नहीं है। यह सबसे पहले तो क्रिया''ील होने कुछ करने का तथा जीवन जीने का प्रक्रिया है।

प्रयोजनवाद एवं मूल्य मीमांसा –

1. सत्यता का रूप, समय, आदर्श और स्थान के अनुरूप बदलता रहता है सत्य निर्मित होता रहता है और यह अनिश्चित है।
2. सत्यता परिवर्तनशील है इसलिए जीवन के आदर्श एवं उद्देश्य स्थाई नहीं समझे जाते है।
3. यह आवश्यक है की वर्तमान स्थिति के अनुरूप वातावरण निर्मित किया जायें यह भी आवश्यक यह भी आवश्यक है कि इसे उपयोगी मार्गो की ओर मोड़ा जायें।
4. कार्य ज्ञान के आधार पर किया जायें आँखें मूद कर किसी सिद्धान्त का अनुसरण करना अनुचित है जो विचार मात्र हो उनका आधार क्रियाशीलता पर हो।

संकेतशब्द - प्रयोजनवाद ,शैक्षिक ,विचार,

दार्शनिक विचारों की श्रृंखला में प्रयोजनवाद एक भौतिकवादी दर्शन है । एक स्वतंत्र दर्शन के रूप में इस विचारधारा का विकास 19वीं शताब्दी में अमेरिका से माना जाता है यद्यपि इसकी झलक के वैज्ञानिक दृष्टिकोण से ही प्राप्त होती है । यह दर्शन उसी विचार को सत्य मानता है, जो प्रयोग की कसौटी पर खरा उतरता है। इसे विभिन्न नामों से जाना जाता है इस नामकरण के पीछे भी उसकी उपयोगिता है।

दार्शनिकों का मानना है कि ब्रह्माण्ड की

समस्त वस्तुएँ विभिन्न क्रियाओं का प्रतिफल है इसलिये इसे फलवाद कहा जाना चाहिए। एक दूसरा पक्ष यह कहता है कि वही वस्तु सत्य है जो मानव – जीवन के लिए उपयोगी है या जो मानव प्रयोजन की सिद्धि करता है इस प्रकार उपयोगिता और प्रयोजन की दृष्टि से इसे प्रयोजनवाद या उपयोगितावाद कहा जाना चाहिए इसके प्रति एक अन्य विचारधारा है कि यह दर्शन किसी निर्धारित निश्चित मूल्य, आदर्श या पक्ष पर विश्वास नहीं करता है और कहता है जो कल सत्य था, वह आज भी सत्य हो। यह आवश्यक नहीं है इस प्रकार यह जीवन के व्यवहारिक पक्ष से ही जुड़ा हुआ है । अतः इसे व्यवहारिकतावाद कहा जाना चाहिए। कुछ चिन्तक अनुभव को व्यवहारजन्य मानते है और कहते है कि इसे अनुभववाद कहा जाना चाहिए इसी अनुभववाद को ही वे प्रयोगवाद का भी नाम देते है।

प्रयोजनवाद को अंग्रेजी में प्रेग्मेटिज्म (Pragmatism) कहा जाता है । इस शब्द की उत्पत्ति ग्रीक भाषा के प्रेग्मेटीकास (Pragmatikas) से है, जो स्वयं उसी भाषा के प्रेग्मा (Pragma) शब्द से बना है । इसका अर्थ होता है 'व्यवहारिकता' या 'क्रिया' । इस प्रकार स्पष्ट है कि इस विचारधारा में व्यवहार और क्रिया पर बल दिया जाता है। उपर्युक्त सभी पक्षों के आधार पर हम इसे किसी भी नाम से सम्बोधित कर सकते है किन्तु आम प्रचलन में यह प्रयोजनवाद के नाम से ही जाना जाता है।

जेम्स का कथन है कि –

''प्रयोजनवाद मस्तिष्क का स्वभाव और दृष्टिकोण है। यह सत्य और विचारों की प्रवृत्ति का सिद्धान्त है। यह वास्तविकता का भी सिद्धान्त है।''

इस दर्शन को अमेरिकी चिन्तकों ने 19वीं शताब्दी में मूर्त रूप प्रदान किया । इसलिए लोग इसे अमेरिकी दर्शन (American Philosophy) भी कहते है। अमेरिकी दार्शनिक सी0एच0पीयर्स तथा डब्ल्यू जेम्स इसके जनक कहे जाते है।

पियर्स ने कहा कि – ''वही विचार सत्य है जो प्रयोग पर उपयुक्त है।'' जेम्स ने अनुभव पर बल दिया और कहा कि सभी वस्तुओं और क्रियाओं की सत्यता की कसौटी मानव है।

जान डीवी ने कहा कि – ''प्रगति सामाजिक बुद्धि से ही सम्भव है आध्यात्मिक से नहीं।'' दर्शन के सम्बन्ध में डीवी का मानना है कि जिज्ञासाओं (प्रश्नों) का वास्तविक हल ढूँढ़ना दर्शन का काम है इसलिए यह शिक्षा का एक सामान्य सिद्धान्त है। परमात्मा (ईश्वर) के विषय में डीवी कहते है कि – ''आदर्श और वास्तविकता के बीच सक्रिय सम्बन्ध ही परमात्मा है।'' इतना ही नहीं सुन्दर को भी वह अनुभवाश्रित मानता है और कहता है कि कोई वस्तु एक को सुन्दर लग सकती है, लेकिन दूसरे को नहीं भी लग सकती है। इस प्रकार प्रयोजनवादियों का यह विचार है कि (सत्य) वास्तविक वस्तुएँ (Reals) परिवर्तनशील (Changeable) है। अतः सत्य शाश्वत नहीं है, यह हमेशा परिवर्तन की अवस्था में रहता है। प्रैट का कथन है कि – ''प्रयोजनवाद हमें अर्थ का सिद्धान्त, सत्य का सिद्धान्त, ज्ञान का सिद्धान्त और वास्तविकता का सिद्धान्त देता है।''

1.1 प्रयोजनवाद एवं तत्व मीमांसा –

प्रयोजनवादी इस ब्रह्माण्ड की रचना के सम्बन्ध में विचार करने के स्थान पर मनुष्य जीवन के वास्तविक पक्ष पर ही विचार करते है। ये इस ब्रह्माण्ड के बारे में इतना ही कहते है कि यह अनेक वस्तुओं और क्रियाओं की व्याख्या के झमेले में नहीं पड़ते। इस इन्द्रियग्राह संसार के अतिरिक्त ये किसी अन्य संसार के अस्तित्व को नहीं मानते। ये आत्मा और मन एक पदार्थजन्य क्रियाशील तत्व है। ये इस ब्रहमाण्ड के किसी अन्तिम सत्य की खोज नहीं करते, ये तो प्रत्यक्ष को ही सत्य मानते है। जेम्स और शिलर संसार की उन्हीं वस्तुओं और क्रियाओं को सत्य मानते है जो मानव के जीवन के लिए उपयोगी है और उसकी प्रकृति के समग्र रूप से सन्तुष्ट करती है उनकी इस विचारधारा को मानवतावादी प्रयोजनवाद कहा जाता है।

प्रयोजनवादी केवल उसे ही सत्य मानते है जो प्रयोग की कसौटी पर खराउतरता है। उनकी इस विचारधारा को प्रयोगवादी प्रयोजनवाद (Experimental Pragmatism) कहा जाता है। कुछ प्रयोजनवादी अनुभव सिद्ध ज्ञान को ही सत्य मानते है भले ही उसे किसी भी भाषा में व्यक्त किया जाए। इसे नाम रूपी प्रयोजनवाद (Nominalistic Pragmatism) कहते है। प्रयोजनवादियों का एक वर्ग मनुष्य को मनोशारीरिक प्राणी मानता है। और केवल उन्हीं को सत्य मानता है जो मनुष्य की जीव वैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते है। इसे जीव विज्ञानवादी प्रयोजनवाद (Biological Pragmatism)कहते है।

1.2 प्रयोजनवाद एवं ज्ञान मीमांसा –

प्रयोजनवादियों के अनुसार अनुभवों की पुनर्रचना ही ज्ञान है। ये ज्ञान को साध्य नहीं अपितु मनुष्य जीवन को सुखमय बनाने का साधन मानते है। इनके अनुसार ज्ञान की प्राप्ति सामाजिक क्रियाओं में भाग लेने से स्वयं होती है। कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों को ये ज्ञान का आधार, मस्तिष्क तथा बुद्धि का ज्ञान का नियंन्त्रण और सामाजिक क्रियाओं को ज्ञान प्राप्त करने का माध्यम मानते है।

1.3 प्रयोजनवाद एवं मूल्य मीमांसा –

प्रयोजनवादी निश्चित मूल्यों और आदर्शो में विश्वास नहीं करते इसलिए ये मनुष्य के लिए कोई निश्चित आचार संहिता नहीं मानते। इनका स्पष्टीकरण है कि मनुष्य जीवन में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। इसलिए उसके आचरण को निश्चित नहीं किया जा सकता, उसमें तो वह शक्ति होनी चाहिए कि वह बदले हुए पर्यावरण में समायोजन कर सकें। ये बच्चों में केवल सामाजिक कुशलता का विकास करना चाहते है। सामाजिक कुशलता से प्रयोजनवादियों का तात्पर्य समाज में समायोजन करने,

अपनी जीविका कमाने, मानव उपयोग की वस्तु एवं क्रियाओं की खोज करने और नई–नई समस्याओं का समाधान की शक्ति से होता है।

1.4 प्रयोजनवाद के मूल सिद्धान्त –

प्रयोजनवाद एक मानवतावादी दर्शन है । यह संसार और उसकी वस्तुओं एवं क्रियाओं के कारणों पर उतना ही विचार नहीं करता जितना मानव जीवन में उनकी उपयोगिता पर विचार करता है। फिर भी एक स्वतंत्र दर्शन के रूप में अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए इसने उसके कारण पक्ष पर भी विचार किया है, परन्तु उस विचार का आधार मानव को ही माना है।

प्रयोजनवाद की तत्व मीमांसा, ज्ञान, मीमांसा, और आचार मीमांसा को यदि हम सिद्धान्तों के रूप में निम्नलिखित रूप से लिख सकते है –

यह संसार अनेक तत्वों एवं क्रियाओं का परिणाम है –

प्रयोजनवाद इस ब्रह्माण्ड के किसी आधारभूत तत्व की खोज और व्याख्या करने के झमेले में नहीं पड़ता । यह तो यह मानता है कि इस संसार की रचना अनेक तत्वों के बीच अनेक प्रकार की क्रियाओं के परिणामस्वरूप हुई है। इसके अनुसार यह क्रिया सदैव होती रहती है। इसलिए यह ब्रह्माण्ड सदैव निर्माण की अवस्था में रहता है। इस प्रकार यह बहुत्ववादी दर्शन है जो क्रिया को निर्माण का आधार मानता है।

यह भौतिक संसार ही सत्य है इसके अतिरिक्त कोई आध्यात्मिक संसार नहीं है –

प्रयोजनवादी उपयोगिता के सिद्धान्त में विश्वास करते है । इसके अनुसार वही वस्तु क्रिया अथवा विचार सत्य है जिसकी मानव जीवन में व्यवहारिक उपयोगिता है । इस कसौटी पर कसने पर यह भौतिक संसार सत्य उतरता है और आध्यात्मिक संसार असत्य । यहाँ हमें यह समझ लेना चाहिए कि हर समय और हर स्थिति में किसी वस्तु क्रिया अथवा विचार कि मानव दृष्टि से व्यवहारिक उपयोगिता नहीं होती इसलिए प्रयोजनवादी किसी शाश्वत सत्य अथवा मूल्य में विश्वास नहीं करते।

आत्मा एक पदार्थजन्य क्रियाशील तत्व है और परमात्मा मनुष्य की कल्पना मात्र है –

प्रयोजनवादी उपयोगिता के सिद्धान्त में विश्वास करते हैं ये किसी सार्वभौमिक सत्ता में विश्वास नहीं करता । आत्मा को ऐसे तथ्य के रूप में देखता है जो क्रिया करता है। इसका स्पष्टीकरण है कि सामाजिक पर्यावरण में यह आत्मा क्रियाशील होती है और इसकी क्रिया की दशा सामाजिक पर्यावरण के अनुकूल होती है। परमात्मा के बारे में प्रयोजनवादियों का विचार है कि यह मनुष्य की कल्पना मात्र है जिस के रूप में सदैव बदलते रहते हैं इसलिये उसे पूर्ण सत्य नहीं कहा जा सकता ।

मनुष्य संसार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है –

प्रयोजनवादियों के अनुसार मनुष्य की पहली विशेषता यह है कि वह मनोशारीरिक प्राणी है जिसके पास क्रिया करने और विचार करने की शाक्ति है मनुष्य समस्या को समझने, उसके हल करने के उपायों को सोचते और उनके अनुसार कार्य करने की शक्ति रखता है। समाजिकता उसकी दूसरी बड़ी विशेषता है। उसकी तीसरी विशेषता यह है कि वह किसी भी बात को अपने अनुभव की कसौटी पर कसे बिना सत्य नहीं मानता, तभी तो नित्य नई खोजे होती है। मानव की यह विशेषता ही उसे संसार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी बनाने का कारण है।

मानव का विकास एक सामाजिक प्रक्रिया है –

मानव विकास के सम्बन्ध में आदर्शवादी आत्मा को आधार मानते हैं और प्रकृतिवादी उसकी प्रकृति को लेकिन प्रयोजनवादियों का तर्क है कि यदि एक व्यक्ति को मानव समाज से दूर कहीं जंगल में अकेला छोड़ दिया जाए तो उसमें मानवीय गुणों व क्षमताओं का विकास नहीं होता, तब उसके विकास का कारण उसकी आत्मा अथवा प्रकृति को कैसे माना जा सकता है। प्रयोजनवादियों के अनुसार मनुष्य समाज की सामाजिक क्रियाओं में भाग लेने से ही अपना विकास करता है।

मनुष्य जीवन का उद्देश्य सुखपूर्वक जीना है –

प्रयोजनवादी मनुष्य जीवन के किसी अन्तिम उद्देश्य में विश्वास नहीं करते । ये उससे इतनी ही आशा करते है कि वह अपनी समस्याओं को समझकर उनको हल करें और अपनी परिस्थितियों के साथ समायोजन करें। ये उससे यह भी चाहते है कि संसार, जो निर्माण की अवस्था में है, उसे इस प्रकार की गति दें जिससे ऐसे वातावरण का निर्माण हो जिससे मनुष्य मात्र को सुख मिले ।

सुखपूर्वक जीने के लिए सामाजिक विकास आवश्यक होता है –

प्रयोजनवादी मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी मानते है। उनका स्पष्टीकरण है कि मनुष्य कभी अकेला नहीं रह सकता और यदि उसे अकेला छोड़ दिया जाता है तो वह मानवीय जीवन व्यतीत नहीं कर पाता। परन्तु समाज में भी वह तभी रह सकता है जब वह उसके साथ अनुकूलन करें। हर समाज की अपनी भाषा होती है, अपनी सभ्यता और संस्कृति होती है। मानव सभ्यता में प्रेम, सहानुभूति, सहयोग, दया, क्षमा, सहनशक्ति, आदि गुणों का होना अनिवार्य है। व्यक्ति किसी समाज में तभी अनुकूलन कर

सकता है जब वह इन सबको ग्रहण कर लेता है इसे ही दूसरे शब्दों में समाजिकरण स्वसंस्कृतिग्रहण अथवा सामाजिक विकास कहते है। जब तक किसी समाज के सदस्य अपने समाज और समाज के प्रत्येक व्यक्ति के लिए संवेदनशील नहीं होते और उनकी सुख–सुविधा की प्राप्ति में हाथ नहीं बँटाते तब तक सामाजिक दृष्टि से उन्हें विकसित नहीं कहा जा सकता। अतः स्पष्ट है कि मनुष्य सुखपूर्वक तभी जी सकता है जब उसका सामाजिक विकास हो जाता है।

सामाजिक विकास के लिये सामाजिक कुशलता आवश्यक होती है –

प्रयोजनवादी केवल शब्दों में विश्वास नहीं करते, अपितु व्यवहारिक प्रयोग में विश्वास करते है। कोई समाज केवल सामाजिक भावनाओं के आधार पर ही विकास नहीं कर सकता, उसके सदस्यों में क्रियात्मक शक्ति भी होनी चाहिए। इस क्रियात्मक शक्ति के द्वारा उसे अपनी समस्याओं का व्यावहारिक समाधान करना चाहिए। भौतिक आवश्यकताओं रोटी, कपड़ा और मकान की पूर्ति के लिए कोई उद्योग, उत्पादन अथवा व्यवसाय करना चाहिए और इस क्षेत्र की तरक्की के लिए ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में नित्य नए तथ्यों का पता लगाना चाहिए और उन तथ्यों को स्वीकार करना चाहिए जिनकी उपयोगिता हो प्रयोजनवादी इसी को सामाजिक कुशलता कहते है सामाजिक कुशलता का दूसरा पक्ष सामाजिक व्यवहार है जिसमें प्रेम, सहानुभूति और सहयोग अपेक्षित होता है। इसके लिए व्यक्ति को सामाजिक हित के आगे अपने वैयक्तिक हितों का त्याग करना होता है। जब तक मनुष्य में इस शक्ति का विकास नहीं होता तब तक वह समग्र रूप से सुखी नहीं हो सकता ।

राज्य एक सामाजिक संस्था है –

प्रयोजनवाद की दृष्टि से राज्य कोई दैवीय संस्था नहीं है अपितु यह मनुष्यों द्वारा मनुष्यों के लिए निर्मित एक सामाजिक संस्था है, इसे व्यक्ति और समाज दोनों के हित का ध्यान रखना चाहिए। प्रयोजनवादियों के इस विचार ने लोकतन्त्रीय शासन प्रणाली को बड़ा बढ़ावा दिया।

प्रयोजनवादी किसी निश्चित सत्य में विश्वास नहीं करते। यही कारण है कि वे मनुष्य की शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यचर्चा, शिक्षण विधियों आदि कुछ भी निश्चित नहीं करते केवल उनके निर्माण के सिद्धान्त प्रस्तुत करते है।

1.5 शिक्षा का सम्प्रत्यय –

प्रयोजनवादियों के अनुसार शिक्षा मनुष्य के विकास की प्रक्रिया है जो सामाजिक पर्यावरण में चलती है । इसके द्वारा समाज की संस्कृति का संरक्षण, संवहन और विकास किया जाता है मनुष्य में वे सब समताएँ उत्पन्न की जाती है जिनसे कि वह अपने प्राकृतिक एवं सामाजिक पर्यावरण में समायोजन करता है और अपने अनुभवों द्वारा उनमें परिवर्तन करता है।

डीवी के अनुसार –

'' शिक्षा व्यक्ति की उन सब योग्यताओं का विकास है जो उसमें अपने पर्यावरण पर नियन्त्रण रखने तथा अपनी सम्भावनाओं को पूर्ण करने की सामर्थ्य प्रदान करें।''

डीवी की रचनाएँ –

1. दि स्कूल एण्ड दि सोसाइटी
2. दि स्कूल एण्ड दि चाइल्ड
3. एजुकेशन ऑफ टूडे
4. हाऊ वी थिंक
5. डेमोक्रेसी व एजुकेशन
6. सक्सपिरियेन्स व एजुकेशन

1.6 शिक्षा का उद्दे य –

प्रयोजनवाद का पूर्ण निश्चित मूल्य और आदर्शो में विश्वास न होने के कारण यह शिक्षा का कोई उद्देश्य निर्धारित नहीं करता है।

प्रयोजनवादियों के अनुसार भौतिक एवं सामाजिक वातावरण में नित्य परिवर्तन होते रहने के कारण मानव नित्य नवीन मूल्यों तथा आदर्शो का निर्माण करता है उसकी आवश्यकताएँ देश एवं काल के अनुसार बदलती रहती है। इसलिए शिक्षा के उद्देश्यों में भी व्यक्ति की आवश्यकता के अनुसार परिवर्तन होता रहता है शिक्षा के सम्बन्ध में डीवी ने लिखा है कि –

''शिक्षा के कोई उद्देश्य नहीं होते, उद्देश्य तो व्यक्तियों के होते है। इन व्यक्तियों में वैयक्तिक भिन्नताएँ होने के कारण इनके उद्देश्य में अन्तर होना स्वाभाविक है तथा साथ ही आयु के साथ– साथ उद्देश्य बदलते रहते है। इन विशेषताओं को ध्यान में रखते हुये प्रयोजनवाद ने शिक्षा के निम्न उद्देश्य निर्धारित करने का प्रयास किया है –

सामाजिक कुशलता का विकास –

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है उसमें उन समस्त गुणों का विकास होना चाहिए जो व्यक्ति को समाज में कुशलता पूर्वक जीवन व्यतीत करने में सहायता प्रदान करें। सामाजिक कुशलता के लिए अवश्यक है कि बालक में प्रेम सहानुभूति सहयोग एवं आर्थिक कुशलता सम्बन्धि गुणों का विकास किया जाए।

गतिशिल निर्देशन –

प्रयोजनवादी शिक्षा का एक उद्देश्य छात्रों का गतिशील निर्देशन करना मानते है उनके मतानुसार व्यक्ति को सदैव नवीन अनुभवों की खोज करने के लिए क्रियाशील रहना चाहिए नवीन अनुभवों को अर्जित करने की अभिलाषा एवं प्रयत्न द्वारा ही व्यक्ति विकास के पथ पर आगे बढ़ सकता है। इस कार्य में उसका मार्ग प्रदर्शन शिक्षा द्वारा होना आवश्यक है।

मूल्यों एवं आदर्शो को निश्चित करने की क्षमता का विकास –

प्रयोजनवादियों के अनुसार बालक में स्वयं के अनुभवों के आधार पर मूल्यों एवं आदर्शो को निश्चित करने की क्षमता का विकास करना ही शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए।

लोकतंत्रीय जीवन की शिक्षा –

डीवी के शिष्य किलपैट्रिक के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य बालकों को लोकतंत्रीय जीवन के लिए तैयार करना है किलपैट्रिक के अनुसार विद्यालयों में लोकतंत्रीय व्यवस्था इन रूप में हो कि बालक वहाँ के वातावरण से ही लोकतंत्रीय शिक्षा ग्रहण कर सकें।

छात्र का विकास –

ब्रू बेकर के अनुसार प्रयोजनवादी शिक्षा का उद्देश्य छात्र के विकास से सम्बन्धित है। किन्तु विकास की दिशा निश्चित न करने के कारण शिक्षाविदों ने इस उद्देश्य की कटु आलोचना की है। किन्तु फिर भी प्रयोजवादियों के अनुसार शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य हो सकता है छात्र की रूचियों एवं क्षमताओं के अनुसार उसका अधिक से अधिक विकास करना तथा नवीन मूल्यों की रचना में उसे सहयोग प्रदान करना, जिससे वह आधुनिक जीवन की समस्याओं का सामना कर सकें, उन्हें सुलझा सकें तथा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें।

1.7 प्रयोजनवाद एवं पाठ्यक्रम –

पाठ्यक्रम के निर्माण करते समय ड्यूबी के मतनुसार दो सिद्धान्तों की विशेष रूप से ध्यान में रखना चाहिए –

1. मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त ।
2. सामाजिक सिद्धान्त।

बालकों को स्वभाविक रूप में निर्भय होकर सीखने का अवसर देना चाहिए । इससे उनकी प्रतिभा का अधिक से अधिक विकास होता है। प्रयोजनवाद यह मानता है मानव सभी प्रकार के बौद्धिक तथा नैतिक ज्ञान को सामाजिक जीवन में भाग लेकर ही प्राप्त कर सकता है। प्रयोजनवादी पाठ्यक्रम में बालकों की रूचियों एवं आवश्यकताओं को ध्यान में रखा जाता है । पाठ्यक्रम अनुभव केन्द्रित होता है इसके अन्तर्गत अनुभवों का कुल योग रहता है । जिसे बालक को विद्यालय की विभिन्न क्रियाओं के माध्यम से प्रदान किया जाता है । प्रयोजनवादी पाठ्यक्रम निम्न सिद्धान्तों पर आधारित है –

अ. उपयोगिता का सिद्धान्त –

पाठ्यक्रम में ऐसे विषय रखे जाते हैं जो उन्हें वर्तमान और भावी जीवन के लिये तैयार करें और ऐसे कौशल उन्हें सिखाएँ जाते है जो उनके काम आ सकें। प्राथमिक विद्यालय के पाठ्यक्रम में भाषा स्वास्थ्य विज्ञान, गणित, इतिहास, भूगोल, तथा शरीरिक प्रशिक्षण को अधिक स्थान दिया जाता है। बालकों के लिए कृषि विज्ञान तथा बालिकाओं के लिए यह विज्ञान के शिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए।

ब. रूचि का सिद्धान्त –

पाठ्यक्रम निर्माण करते समय बालक की रूचि को ध्यान में रखना चाहिए। जॉन डीवी ने बालकों में चार प्रकार की रूचियॉ बताई है –

विचार आदान– प्रदान करने की रूचि, अन्वेषण एवं खोज की रूचि, कलात्मक अभिव्यक्ति की रूचि तथा रचनात्मक रूचि। इन्हीं रूचियों को ध्यान में रखकर भाषा लिखना, पढ़ना, गिनना, विज्ञान , हस्तकार्य, शिल्प कौशल, कला, साहित्य, एवं काव्य को पाठ्यक्रम में स्थान देना चाहिए।

स. क्रिया का सिद्धान्त –

जीवन की वास्तविक क्रियाओं को पाठ्यक्रम में स्थान मिलना चाहिए। बालक जिस कार्य को अपने हाथ से करके सीखता है उसका ज्ञान स्थायी होता है । अतः शिक्षण में एवं पाठ्यक्रम में क्रिया को महत्व दिया जाना चाहिए इन्हीं विचारों से प्रभावित होकर किलपैट्रिक ने योजना पद्धति का अविष्कार किया जिसमें विद्यार्थी किसी वास्तविक समस्या का स्वंय हल ढूँढ़ते है।

द. एकीकरण का सिद्धान्त –

प्रयोजनवाद ज्ञान की एकता में विश्वास करता है। विभिन्न विषयों को पाठ्यक्रम में इस ढंग से रखना चाहिए कि अन्त में ज्ञान की एक इकाई के रूप में छात्र ग्रहण कर सकें ज्ञान के एकीकरण के साथ उसकी उपयोगिता हैं यही कारण है कि आज की शिक्षा में सह– सम्बन्ध प्रणाली (डमजीवक वि ब्वततमसंजपवद) को अधिक महत्व दिया गया है। अतः प्राथमिक विद्यालयों का पाठ्यक्रम तीन भाँगों में बटा रहता है।

शारीरिक क्रियाएँ –

कागज लकड़ी व धातु के कार्य, भोजन बनाना, सिलाई बुनाई, खेलकूद, बागवानी का कार्य, प्रकृति अध्ययन एवं भ्रमण इत्यादि।

सामाजिक जीवन का अध्ययन –

इतिहास भूगोल नागरिकशास्त्र इत्यादि।

पढ़ना लिखना व्याकरण गणित इत्यादि –

माध्यमिक स्तर पर उपर्युक्त विषयों का और विस्तृत एवं गहन अध्ययन कराया जाता है और उनकी रूचि तथा क्षमता के आधार पर उन्हें एक विशिष्ट प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है।

1.8 प्रयोजनवाद एवं शिक्षण विधि –

प्रयोजनावाद में क्रिया पर बल दिया जाता है। बालक जब अपने हाथ से कोई काम करता है तो अच्छी तरह से सीखता है। अतः शिक्षण–विधि में यह ध्यान रखा जाता है। कि छात्र निष्क्रिय न होने पाये। केवल विचारात्मक शिक्षण से कोई लाभ नहीं। व्याख्यान पद्धति में अध्यापक तो सक्रिय रहता है।

परन्तु छात्र निष्क्रिय श्रोता के रूप में बैठे रहेते है। अतः इस विधि का व्यावहारिकतावादी खण्डन करता है। वह यह मानता है कि विचार तो क्रिया का परिणाम है।

हरबर्ट ने बड़े परिश्रम से शिक्षण–प्रक्रिया को समझाया था किन्तु उसने यह माना था कि विचार पहले आता है और क्रिया वाद में होती है। जॉन डीवी ने विचार और क्रिया के सम्बन्ध को उलट दिया। उसके मतानुसार पहले क्रिया होती है और तब विचार आता है । अतः उन्होनें शिक्षण विधि में क्रिया को ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना है।

शिक्षण विधि ऐसी न हो कि छात्र अनुकरण मात्र सीखे और दूसरें जैसा कहें उसे वैसा ही स्वीकार कर लें। शिक्षा का एक बड़ा काम यह है कि छात्रों में स्वतन्त्र चिन्तन उत्पन्न किया जाय। छात्र आलोचनात्मक ढंग से सोचना सीखें। शिक्षण विधि ऐसी हो जिसमें छात्र स्वयं क्रियाशील रहे तो वे स्वयमेव सोचने को भी बाध्य होगें अतः स्वतंन्त्र चिन्तन के विकास के लिए विधि को क्रियाशील बनाना होगा।

व्यवहारिकतावादी शिक्षा विधि समस्या केन्द्रित होती है। कोई समस्या ले ली जाती है। उस समस्या का चुनाव भी छात्रों की सम्मति से किया जाता है। फिर उस समस्या के समाधान के लिए अनेक कार्य किये जाते है। इस प्रकार उस समस्या से सम्बन्धित इतिहास, भूगोल, आदि का भी ज्ञान होता है। सभी विषय सम्बन्धित होकर छात्र के समक्ष आते है। इससे छात्रों को चिन्तन करने की प्रेरणा मिलती है और वे ज्ञानार्जन भी करते है। इसमें शिक्षक छात्रों का सहयोग भी लेता रहता है। व्यवहारिकतावादी के अनुसार शिक्षण–प्रक्रिया और छात्रों में शिक्षक दोनों का सम्मिलित प्रयास होता है।

व्यवहारिकतावाद के अनुसार शिक्षाविधि के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित है –

1. व्यवहारिकतावाद के अनुसार किसी भी पद्धति को अपनाने से पूर्व वास्तविक जीवन की दशाओं का अध्ययन करना आवश्यक है।
2. बालक कि रूचियों एवं योग्यताओं की जाँच करनी चाहिए और जाँच के परिणामों के आधार पर ही शिक्षण– विधि की रूपरेखा बनानी चाहिए।
3. अध्यापक को चाहिए कि वह किसी विधि की दृढ़ एवं निश्चित न समझ ले। उसे शिक्षण विधि पर सदा नये प्रयोग करते रहना चाहिए और प्रयोगों के परिणामों के आधार पर विधि में परिवर्तन करते रहना चाहिए।
4. शिक्षण प्रक्रिया का सप्रयोजन होना चाहिए। निरूउद्देश्य प्रक्रिया में छात्र रूचि नहीं लेगें किन्तु यह लक्ष्य निरपेक्ष एवं अंतिम नहीं होता विधि तात्कालिक प्रयोजनों पर निर्भर करेगी।
5. सिद्धान्त एवं व्यवहार में भेद नहीं है दोनों में दृढ़ सम्बन्ध है। सिद्धान्त सदा व्यवहार से निकलता है और यदि सिद्धान्त और व्यवहार में भेद होता है तो सिद्धान्त को बदलना चाहिए न कि व्यवहार को।

6. शिक्षण प्रक्रिया तभी सार्थक होती है जब छात्र सक्रिय रहें अतः क्रिया द्वारा शिक्षण का सिद्धान्त सर्वोत्तम सिद्धान्त है और इसी के आधार पर नवीन पद्धतियों का विकास करना चाहिए।
7. शिक्षण–विधि में सामूहिक चर्चा को विशेष स्थान मिलना चाहिए। सामूहिक चर्चा में छात्रों को अधिकाधिक स्वतन्त्रता प्रदान करनी चाहिए।
8. शिक्षण– विधि में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पाठ्यक्रम के विभिन्न विषयों का अध्यापन पृथक–पृथक विषयों के रूप में न होकर सम्बद्व विषयों के रूप में होगा।

शिक्षण विधि के उपर्युक्त सिद्धान्तों के आधार पर डीवी के प्रमुख शिष्य किलपैट्रिक ने प्रोजेक्ट मैथड़' का प्रतिपादन किया है। इस मैथड में सभी छात्र मिलकर प्रोजेक्ट तय करते है। अध्यापक पहले सभी प्रकार के परिस्थितियों का विश्लेषण कर देता है। फिर इनमें से बालक अपने लिये प्रोजेक्ट चुन लेते है और योजना बनाते है। योजना बनाने के बाद वे उस योजना से सम्बद्ध कार्यो में जुट जाते है। अन्त में प्रोजेक्ट की समाप्ति पर उनका मूल्यांकन किया जाता है। प्रोजेक्ट में व्यक्तिगत क्रियाओं से अधिक महत्व सामूहिक क्रियाओं को दिया जाता है।

1.9 प्रयोजनवाद और शिक्षक –

प्रयोजनवादी शिक्षा में बालक को प्रमुख स्थान देते हुये भी अध्यापक के महत्व को कम नहीं मानते है जिस शिक्षा प्रक्रिया को प्रयोजनवादी प्रस्तावित करते है उसमें अध्यापक के मार्ग प्रदर्शन के बिना वांच्छित सफलता प्राप्त होना असम्भव है डीवी शिक्षक को मार्ग दर्शक के रूप में स्वीकार करते है। प्रयोजनवादी छात्रों को जीवन से सम्बन्धी समस्याओं का समाधन ढूढ़ना पड़ता है। अध्यापक छात्रों की समस्याओं का सुझाव देता है तथा उन समस्याओं का समाधान प्राप्त करने के लिए वह छात्र को प्रेरित करता है।

डीवी ने शिक्षा में सामाजिक पक्ष पर अधिक बल दिया है। अध्यापक समाज का एक सक्रिया सदस्य होता है। अतः वे उससे आशा करते है कि वह विद्यालयों में सामाजिक पर्यावरण का निर्माण करके बालक में वांछित सामाजिक गुण एवं आदतों का निर्माण कर सकता है। अध्यापक स्वयं सामाजिक पर्यावरण होता है। अतः उसे सदैव सजग रहना चाहिए।

अध्यापक को छात्रों में स्वतन्त्र चिन्तन की आदत का निर्माण करना चाहिए उसको स्वयं समस्याओं का समाधान न करके छात्रों में ही समस्या का चयन उससे सम्बन्धित अध्ययन तथा मूल्यांकन करने की प्रेरणा देनी चाहिए।

प्रयोजनवादियों के अनुसार, अध्यापक सूचनायें अथवा अनुभव प्रदान करने के लिए नहीं है। अध्यापक का कार्य तो छात्रों को क्रियाओं में लगाकर स्वयं अनुभव अर्जित करने की प्रेरणा देना है। उसको छात्रों के मन पर कोई चीज बलपर्वूक लादनी नहीं चाहिए। छात्रों को अपना विकास करने की स्वतंत्रता प्राप्त होनी चाहिए। कक्षा में अध्यापक को जनतन्त्रात्मक दृष्टिकोण रखना चाहिए। अध्यापक को उपदेशक के रूप में न होकर निरीक्षक के रूप में होना चाहिए। उसको छात्रों का उत्तम पथ–प्रदर्शक तथा घनिष्ठ मित्र होना चाहिए।

1.10प्रयोजनवाद तथा विद्यार्थी –

प्रयोजनवादी शिक्षा में बालक का महत्वपूर्ण स्थान है इसलिए उन्होनें बाल क्रेन्द्रित शिक्षा पर अधिक बल दिया है। प्रयोजनवादी भी बालक की जन्मजात शक्तियों, योग्यताओं तथा रूचियों में विश्वास करते है। उनके अनुसार बालक की शिक्षा इन प्राकृतिक शक्तियों पर ही आधारित होनी चाहिए।

प्रयोजनवादी आन्तरिक शक्तियों को आध्यात्मिक न मानकर प्राकृतिक मानते है। इन प्राकृतिक शक्तियों का विकास बालक उपयुक्त वातावरण मिलने पर ही कर पाता है इस प्रकार प्रयोजनवादी बालक के विकास के लिए वातावरण को महत्वपूर्ण मानते है।

प्रयोजनवाद आदर्शो तथा पूर्व निर्धारित मूल्यों में विश्वास नहीं करता है चिन्तय सत्य उसके लिए कोरी कल्पना है प्रयोजनवाद के अनुसार बालक स्वयं मूल्यों का निर्माता होता है। वह स्वयं जीवन के उद्देश्य निर्धारित करता है उसके ऊपर मूल्य या आदर्श बाहर से थोपने नहीं चाहिए। इससे स्पष्ट है कि प्रयोजनवाद ने शिक्षा में शिक्षार्थी को केन्द्र बिन्दु बनाया है।

1.11प्रयोजनवाद और विद्यालय –

प्रयोजनवादी विद्यालय को एक सामाजिक संस्था के रूप में देखते है। वे शिक्षा को सर्वप्रथम एक सामाजिक प्रक्रिया के रूप में मानते है। यह शिक्षा ही है जिसके द्वारा समाज अपने आपको नवीन रूप प्रदान करता है और यह समाज ही है जो अपने सदस्यों की शिक्षा के लिए मार्ग तथा साधन निर्धारित करता हैं। यदि समाज सरल होता तो 'सामान्य साधनों' द्वारा भी इसके सदस्यों को शिक्षा मिल सकती थी।

परन्तु इसकी जटिलता के कारण विद्यालय की स्थापना के निम्नलिखित कारण दिये जा सकते है –

1. विद्यालय नवीन पीढ़ी के लिए सीखने का उपर्युक्त आयोजन करता है। अविधिक साधनों द्वारा या समाज में रहकर बालक ज्ञान को अर्जित कर सकते है, परन्तु ज्ञान अपूर्ण तथा खण्डित होगा। बालकों को इससे अधिक सीखने की आवश्यकता होगी और इसके लिए विद्यालयों का स्थापित होना आवश्यक है।
2. आधुनिक जीवन इतना जटिल हो गया है कि ये वस्तुयें जो पास है उनकी तो बात ही क्या दूर की वस्तुओं का भी विस्तृत प्रभाव पड़ता है। विद्यालय एक ऐसा स्थान है जहाँ विभिन्न देशीय अनुसंन्धान तथा सांस्कृतिक दृष्टिकोण से बालकों को

परिचित कराया जाता है। इसके अतिरिक्त सांस्कृतिक दायित्व विद्यालय के बिना नई पीढ़ी को हस्तान्तरित नहीं हो सकती है अतः विद्यालय जैसी सविधिक साधन की आवश्यकता है।

3. समाज अपनी महान संस्था पाठशाला की सहायता से ही अपने कार्य को सम्पन्न करता है। क्योंकि विद्यालय समाज का एक साधन है इस कारण उसे समाज से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करना आवश्यक है।
4. वास्तव में विद्यालय बालक के लिए समाज का एक सरलतम रूप है इसी कारण उसके द्वारा सीखना सम्भव है। वह समाज के उन्हीं रूपों से सम्बन्ध रखता है जो उचित हैं वे रूप जो बालक पर बुरे प्रभाव डालने वाले होते है उन्हें त्याग देता है। इस प्रकार विद्यालय व्यक्तियों को स्पष्ट तथा संगठित रूप में वर्तमान जीवन की आवश्यकताओं से परिचित कराता है।

1.12 प्रयोजनवाद और अनुशासन –

प्रयोगवादी लोग सामाजिक विचारों और क्रियाओं के माध्यम से अनुशासन लाना चाहते है। इसके अनुसार स्वतन्त्र साभिप्राय क्रियाएँ, सुखद, उपयोगी और सामूहिक होनी चाहिए। इन क्रियाओं के माध्यम से बालक स्वयं आत्म–नियन्त्रित हो जाता है इससे वह चरित्रवान और नैतिक बन जाता है।

अनुशासन के सम्बन्ध में डीवी का मत है कि यदि विद्यालय का सम्पूर्ण कार्य बालकों की रूचि के अनुसार हो तो अनुशासनहीनता की समस्या ही उत्पन्न नहीं हो सकती किन्तु इसके साथ ही वे अधिक व्यक्तिगत स्वतंन्त्रता के पक्षपाती नहीं है वे सामाजिक अनुशासन को वैयक्तिक अनुशासन से अधिक महत्वपूर्ण मानते है सामाजिक अनुशासन बालकों के प्राकृतिक आवेग या मूल प्रवृत्तियों में सहायक होता है प्रयोजनवादी उपदेश द्वारा अनुशासन का पाठ सिखाने के पक्ष में नहीं थे।

निष्कर्ष -

प्रयोजनावादी शिक्षा का सम्प्रत्यय –

शिक्षा मनुष्य के विकास की प्रक्रिया है जो सामाजिक पर्यायवरण में चलती है। सत्य परिवर्तनशील, अतः शिक्षा–क्रियाओं में परिवर्तन आवश्यक है।

प्रयोजनवाद और शिक्षा उद्देश्य –

पूर्व निर्धारित उद्देश्य अनुपयुक्त। समयानुसार उद्देश्य निर्धारण, सामाजिक कुशलता का विकास, गतिशील निर्देशन, मूल्यों और आदर्शो को निश्चित करने की क्षमता, लोकतंत्रीय जीवन की शिक्षा, छात्र का विकास ।

प्रयोजनवाद और पाठ्यक्रम –

उपयोगिता का सिद्धान्त, रूचि का सिद्धान्त, क्रिया का सिद्धान्त, एकीकरण का सिद्धान्त अपनाकर पाठ्यक्रम की व्यवस्था करना।

प्रयोजनवाद और शिक्षण विधि –

प्रयोजनवाद शिक्षण विधि में क्रिया को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना है। प्रयोजनवाद का शिक्षण–सिद्धान्तों की उपयोगिता की दृष्टि से भारी योगदान। क्रियात्मक और प्रयोगत्मक प्रणाली। शिक्षण–सिद्धान्त साभिप्राय और उपयोगी ।

प्रयोजनवाद और शिक्षक –

प्रयोजनवाद के अनुसार शिक्षक का महत्वपूर्ण स्थान । शिक्षक ही शिक्षा व्यवस्था पर नये प्रयोग और सिद्धान्त निरूपण करने वाला। शिक्षक की योग्यता आवश्यक।

प्रयोजनवाद और विद्यार्थी –

प्रयोजनवादी शिक्षा में बालक का महत्वपूर्ण स्थान इसलिए उन्होनें बाल केन्द्रित शिक्षा पर अधिक बल दिया।

प्रयोजनवाद और विद्यालय –

प्रयोजनवाद विद्यालय को एक सामाजिक संस्था के रूप में देखता है। विद्यालय व्यक्तियों को स्पष्ट तथा संगठित रूप से वर्तमान जीवन की आवश्यकताओं से परिचित कराता है।

प्रयोजनवाद और अनुशासन –

स्व–क्रियाओं, स्वानुभावों द्वारा बालक में स्वानुशासन लाना इसी से बालक के चरित्र का नैतिक विकास ।

सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची –

1. चतुर्वेदी, कुसुम, ''शिक्षा के अधार'', हर प्रसाद भार्गव पुस्तक प्रकाशन आगरा,वर्ष 1987, पृ0सं0 362–384।
2. माथुर, एस0एस0, ''शिक्षा के दार्शनिक तथा सामाजिक आधार'', विनोद पुस्तक मंन्दिर आगरा, वर्ष 1995, पृ0सं0 83–121, 131–140।
3. शर्मा, आर0ए0, ''शिक्षा अनुसंन्धान,'' सूर्या पब्लिकेशन मेरठ, वर्ष 2001, पृ0सं0 466।
4. लाल, बिहारी रमन, ''शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त'', रस्तोगी पब्लिकेशन गंगोत्री शिवाजी रोड, मेरठ, वर्ष 2004, पृ0सं0 222–235, 252–265।

5. मित्तल, एम0एल0, ''उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक'', इण्टरनेशल पब्लिकेशन हाउस, मेरठ, वर्ष 2005, पृ0सं0 92–110, 235–253।
6. चौबे, सरयू प्रसाद, ''शिक्षा के दार्शनिक समाजशास्त्रीय आधार'', इण्टर नेशनल पॉब्लिशिंग हाउस मेरठ, वर्ष 2007, पृ0सं0 153–155, 176–185।
7. पाण्डेय, रामशकल, ''शिक्षा के दार्शनिक सिद्धान्त,'' अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा, वर्ष 2007, पृ0सं0 242–293।
8. शर्मा, ओ0पी0, '' शिक्षा के दार्शनिक आधार'', अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा, वर्ष 2007–2008, पृ0सं0 243–275।
9. पाठक, पी0डी0 व त्यागी जी0एस0, ''शिक्षा के दार्शनिक सिद्धान्त,'' अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा, वर्ष 2007–2008, पृ0सं0 73–111।
10. त्रिपाठी, लाल जी एवं पाण्डेय, श्रीधर, '' शिक्षा के दार्शनिक सिद्धान्त'' राकेश महरोत्रा न्यू कैलाश प्रकाशन इलाहाबाद, वर्ष 2007–2008, पृ0सं0 42–69।
11. भाटिया, के0के0 एवं नारंग, सी0एल0, ''शिक्षा के दर्शनशास्त्रीय तथा समाजशास्त्रीय आधार,'' टंडन पब्लिकेशन लुधियाना, वर्ष 2008, पृ0सं0 142–154।
12. त्रिपाठी, मधुसूदन, ''शिक्षा अनुसंधान का विश्वकोश (पॉच खण्ड) खण्ड दो : आधुनिक भारतीय समाज में शिक्षा,'' ओमेगा पब्लिकेशन नई दिल्ली, वर्ष 2009, पृ0सं0 54–68।
13. सक्सेना, निर्मल, ''शिक्षा एवं उदीयमान भारतीय समाज,'' मलिक एण्ड कम्पनी जयपुर, वर्ष 2009, पृ0सं0 95–110।
14. सक्सेना, सरोज, '' शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार'', साहित्य प्रकाशन आगरा, वर्ष 2011, पृ0सं0 198–234।
15. पाल, एम0, ''शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय सिद्धान्त, '' साहित्य प्रकाशन आगरा, वर्ष 2011, पृ0सं0 70–84, 96–108।
16. सक्सेना, सरोज, '' विद्यालय प्रशासन एवं स्वास्थ्य शिक्षा,'' साहित्य प्रकाशन आगरा, वर्ष 2011, पृ0सं0 122।
17. पाण्डेय, आलेक कुमार एवं वर्मा, बी0एस0 ''शैक्षिक अनुसंधान विधियाँ,'' साहित्य प्रकाशन आगरा, वर्ष 2011, पृ0सं0 6।
18. शर्मा, राम सिंह, ''शिक्षा की दार्शनिक अवधारणा,'' संजय पब्लिकेशन आगरा, वर्ष 2011, पृ0सं0 167–194, 195–226।